Bundelkhand Research Journal | June, 2024 | Volume 2, Issue 1 ISSN: 2584-0533

शक्ति-शिला, अनुसूया आश्रम, चित्रकूट में मातृकाओं के चित्रार्ध (बा-रिलीफ या उद्भृत तक्षण)

राकेश व्यास[1], कुंजीलाल पटेल[2] एवं शिवभूषण सिंह गौतम[3]

[1]व्यास भवन, नरसिंहगढ़ पुरवा, छतरपुर 471001

[2]हिन्दी विभाग, महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर 471001

[3]अन्तर्वेद, कमला कालोनी, छतरपुर 471001

Corresponding Author: rakeshvyaskota@gmail.com

Received 09 May 2024; Accepted 20 June 2024

सार

प्रसिद्ध तीर्थ स्थल चित्रकूट के आस्था केन्द्र अनुसूया आश्रम के समीप स्थित शिला पर मातृकाओं का दुर्लभ चित्रार्ध (बा-रिलीफ) देखने को मिलता है। इस स्थान की जानकारी होने के बाद भी अभी तक इस विशिष्ट गुण युक्त उद्भृत-तक्षण की दार्शनिक व तात्विक विवेचना नहीं की गई है। इनमें देवी-देवताओं के साथ दर्शाये गये वाहन व आयुधों में तात्विक गूढ़ार्थ छिपा हुआ है, और वे मानवीय गुणों, भावों व दुर्बलताओं के प्रतीक हैं। इसी प्रकार से इनके बहुमुख इनकी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वस्व सार्वकालिक उपस्थिति के प्रतीक हैं, तो बहुहस्त इनकी गत्यात्मक ऊर्जा के प्रतीक हैं। इस स्थान के भौगोलिक निर्देशांक 25.178979, 80.865681 हैं, तथा शिला के पश्चिम से उत्तर-पश्चिम फलक पर मातृकाओं, गणेश, मुखलिंग व शिव का उद्भृत-तक्षण किया गया है। मूर्ति विज्ञान सम्बंधी अधिकांश ग्रंथों व पौराणिक कथानकों की मान्यता भी यही है कि सप्त, अष्ट या नव मातृकाओं से ही 64 से लेकर 81 योगिनियों का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी लिये मातृकाओं को भी योगनियों में सम्मिलित कर, उनका चित्रण किया जाता है। प्रस्तुत आलेख में शक्ति-शिला की मातृकाओं, गणेश, शिव और मुखलिंग के अद्भुत व दुर्लभ स्वरूप की व उसके पीछे के दर्शन पर चर्चा की जा रही है।

कुंजी शब्द: मातृक**,** शक्ति-शिला**,** बा-रिलीफ**,** वाहन**,** आयुध।

Publisher: Maharaja Chhatrasal Bundelkhand University, Police Lines Road, Panna Road Chhatarpur (M.P) - 471001

प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय मूर्ति व चित्रकला में अमूर्त को मूर्त रूप देने की पारम्परिक व्यवस्था आगमों व प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में निहित विशिष्ट सिद्धांतों पर आधारित है। यही कारण है कि ये 'अनुप्रतीक' (आयकन) ज्ञानातीत ईश्वर और आत्मिक शक्तियों का प्रतिरूपण हैं, जो लौकिक जगत का संचालन करती हैं। अमूर्त, अदृश्य और अप्रकट के औपचारिक प्रत्योक्षकरण, और उसको आकार देने की व्यवस्था का वर्णन आरण्यक व ब्राह्मण ग्रंथों से लेकर पुराणों, उपनिषदों व आगम ग्रंथों में मिलता है। आगम का कथन है कि 'सकल', 'निश्कल' की प्रतिच्छाया है, और 'यथा ब्रह्माण्ड तथा पिण्डाण्ड' अर्थात अलौकिक और लौकिक अभेद्य हैं। वास्तुसूत्र उपनिषद के अनुसार - 'अमूर्त से मूर्त का प्राकट्य होता है'। मूर्तिकला का उद्देश्य अमूर्त विचार का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण है। अमूर्त सिद्धान्त या परिघटना के गुणों व विशेषताओं का बिम्ब निर्मित कर, उसे सामान्य व्यक्ति के लिये दृष्टव्य व ग्राह्य बनाना, इससे सम्भव हो पाता है। भारत में मूर्तिकला के माध्यम से 'लौकिक क्रम' (कौस्मिक आर्डर), 'लौकिक प्रक्रिया' (कौस्मिक प्रोसेस), 'चक्रीयता', 'निरंतरता', 'काल', 'बहुलता', 'मनीषा', और 'सौन्दर्य' ध्यान रख कर मूर्ति निर्माण के सिद्धान्तों का गठन किया गया है। इसमें आदर्श जीवन दर्शन को मानवीय रूप देकर, और उसके मानवीय स्वरूप को बहुमुखी, बहुहस्त बना कर, और उसे विभिन्न आयुध व वाहन देकर लाक्षणिक स्वरूप प्रदान किया गया है, जो किसी न किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। उदाहरण स्वरूप विष्णु, शिव, ब्रह्मा व देवी के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करें तो पाते हैं कि उनके बहुहस्त व उनमें धारण किये गये आयुध विभिन्न भावों व नियमों के प्रतीक हैं। विष्णु के हाथों में धारण किये गये, शंख, चक्र, गदा और पद्म क्रमशः – प्रणवाक्षर ॐ व अधर्म विनाशक, संसार चक्र, लौकिक क्रम का स्वनियमन व संसार से निर्लिप्तता के प्रतीक हैं। इन आयुधों की व्यूहरचना के आधार पर विष्णु के 24 अलौकिक भावों का लौकिक नामकरण व चित्रीकरण होता है। मूर्ति शिल्प में शिल्पकार लम्बवत, क्षैतिज और तिरछी रेखाओं का उपयोग क्रमशः प्रेरणास्पद गुण, प्रशांति या अक्षोभ का भाव, और गतिशीलता प्रदर्शित करने के लिये करता है।

वास्तुसूत्र के अनुसार मूर्ति का उद्देश्य अव्यक्त निहितार्थ को व्यक्त करना है। प्रतिमा को गढ़ने से पूर्व उसके निर्माण के आधारभूत अन्तर्निहित सिद्धान्त का मानस दर्शन आवश्यक है। सैद्धान्तिक स्पष्टता प्राप्त हो जाने के बाद, उसका तात्विक विश्लेषण करना चाहिये। इससे मानस सूत्र प्राप्त होता है, जिसे ध्यानमन्त्र कहते हैं। इस मानस सूत्र की शिलाखण्ड, काष्ठ, या अन्य किसी माध्यम पर अभिव्यक्ति उस विचार को भौतिक रूप देती है। इस प्रक्रिया को इस प्रवाह-संचित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

अव्यक्त सिद्धान्त का मानस दर्शन > उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति > प्रतिमा का मानसिक चित्रीकरण > मानस चित्र का खाका > मूलतत्व का शिल्पान्तरण > प्रतिमा का

अलंकरण > व्यक्त प्रतिमा।

जब हम प्रतिमा के संगठन की प्रक्रिया के विविध तत्वों को समझ लेते हैं, तब यह समझ पाना आसान हो जाता है कि क्यों एक देव प्रतिमा के इतने विभिन्न स्वरूप अलग-अलग स्थानों पर देखने को मिलते हैं। मूर्ति शिल्प के शास्त्रीय सिद्धान्तों का पालन करते हुये भी, शिल्पी या शिल्प प्रवर्तन करवाने वाले को यह स्वतंत्रता रहती है कि वह अपने मानस सिद्धान्तों, पूजा पद्धति, ध्यान-साधना विधि के आधार पर प्रतिमा को गढ़वा सके। वह अपनी देव-प्रतिमा की मुद्रा, उसके आयुध, वाहन, आसन, मुख व हस्त संख्या का स्वयं निर्धारण कर सकता है, क्योंकि ये वे प्रतीक हैं जिनके आधार पर अपनी श्रद्धानुसार सैंकड़ों देवी-देव स्वरूप गढ़े जा सकते हैं। किसी स्थान विशेष के मूर्ति शिल्प का आकलन करने के लिये उस क्षेत्र विशेष में प्रचलित तत्कालीन मान्यताओं, पंथों, सिद्धान्तों का अध्ययन भी आवश्यक है। तब ही हम उस क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाली विविध प्रतिमाओं के विशिष्ट गुणों व उनकी विविधता को समझने में सक्षम हो सकते हैं (आचारी, 2015)।

इस पृष्ठभूमि में चित्रकूट की शक्ति-शिला पर चित्रार्ध मातृकाओं, ऊर्ध्वलिंग दिगम्बर शिव, उत्तरमुखी मुखलिंग व गणेश प्रतिमा के रहस्य को समझने के लिये, यहाँ पर प्रचलित तत्कालीन शैव-शाक्त पंथों का अध्ययन व व्याख्या आवश्यक है, क्योंकि इनके कतिपय तत्व - जैसे कि महालक्ष्मी की उपस्थिति व उनके अतिरिक्त अन्य सभी मातृकाओं का एक हाथ में कपाल धारण करना, शिव का दिगम्बर ऊर्ध्वलिंग पर सौम्य स्वरूप, मातृकाओं के मध्य में मुखलिंग का उत्कीर्णन व सभी चित्रार्धों का नृत्य की मूल भंगिमा 'अर्धमंडली' में चित्रण, शोधकर्ता को अटकाने व भटकाने के लिये पर्याप्त हैं। शक्ति-शिला, चित्रकूट के व अन्य स्थानों पर पाये गये सप्त या अष्ट मातृका चित्रणों में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। इसको समझने के लिये हमें भगवान शिव के अवतार माने जाने वाले लकुलीश व उनके पाशुपत दर्शन व उससे उपजी शाखाओं, जैसे कि सिद्ध, कापालिक, नाथ, दक्षिण भारत में प्रचलित कालामुख व लिंगायत पंथों के सिद्धान्तों, साधना पद्धति व उनके समय के मूर्तिशिल्प का अध्ययन करना पड़ेगा। लोरेन्ज़ेन (1991) के अनुसार चूंकि उपरोक्त सभी दर्शन 'पंथ' की पाश्चात्य परिभाषा पर खरे नहीं उतरते हैं, अतः इन्हें वैरागियों की मठ व्यवस्था कहना अधिक उचित होगा। इनके अपने पृथक मठ तो होते हैं, पर इनके अनुसरणकर्ता व दानकर्ता समाज के सभी वर्गों व मतों में पाये जाते हैं। जबकि पंथ या सेक्ट की पाश्चात्य परिभाषा में प्रत्येक सेक्ट की विलग पादरी व्यवस्था, पूजन पद्धति व अनुसरणकर्ता होना अनिवार्य है।

उपरोक्त सभी धर्म-दर्शन शैव-शाक्त या शाक्त-शैव मान्यताओं पर आधारित हैं। कहीं तो शिव की शक्ति के रूप में दुर्गा या उनके रूपों का निरूपण है, तो कहीं शक्ति को मूल में मान कर उन्हीं में शिव की कल्पना की गई है। शक्ति के अभाव में शिव की तुलना शव से की गई है। लिंग पुराण के अनुसार लकुलीश को ऐतिहासिक पुरुष व भगवान शिव का अन्तिम अट्ठाइसवां अवतार एवं योग व तन्त्र साधना का प्रतिपादक माना जाता है। इन्हें शैव

परम्परा का पुनरुद्धारक व पाशुपत दर्शन का स्थापक माना जाता है। अनेक विद्वानों का मानना है कि पाशुपत दर्शन पहले से विद्यमान था, जिसके सिद्धान्तों को पुनर्स्थापित करने में लकुलीश व उनके शिष्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। इनके चार शिष्यों कौरुश्य, गर्ग, मित्र और कुशिका के नाम आते हैं। कूर्म पुराण, वायु पुराण और लिंग पुराण की भविष्यवाणी के अनुसार महेश्वर का पृथ्वी पर अवतरण एक पारिव्राजक संत लकुलिन या नकुलिश के रूप में होगा, और जिनके चार शिष्य पाशुपत दर्शन को आगे बढ़ायेंगे। इन्होंने गोशाल, बौद्ध व जैन आदि प्रचलित मतों के सामने एक विचारधारा को रखा, जिसमें सांख्य के सिद्धान्त, हठयोग व तंत्र साधना को महत्व दिया गया था। पाशुपत दर्शन का अधिष्ठाता स्वयं भगवान शिव को माना जाता है, जिन्होंने धरती पर अवतरित होकर 'पाशुपत सूत्र' के माध्यम से इसके मुख्य सिद्धान्तों का उद्घाटन किया था। चौथी से छठी शताब्दी के मध्य में भगवतपाद श्री कौंडीन्य ने इसका भाष्य लिखा था। इसमें पाशुपत साधकों के लिये दिशा निर्देश दिये गये हैं। लकुलीश के जीवनकाल का निर्धारण करना कठिन है, पर इतना निश्चित है कि विक्रमी सम्वत के आरम्भ से लेकर कुषाण काल तक पाशुपत मत स्थापित हो चुका था। चौथी शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी तक पाशुपत मत व इसकी शाखाओं का प्रचार दक्षिण से लेकर काश्मीर तक हो गया था। मध्य भारत में मालवा से लेकर बुन्देलखण्ड तक कापालिक, सिद्ध, नाथ आदि तंत्र साधना व हठयोग में विश्वास करने वाले मत स्थापित हो चुके थे, जब कि कालामुख प्रायः दक्षिण भारत तक सीमित थे (हैटले, 2007)।

कापालिकों और कालामुखों के बारे में अधिकतर जानकारी रामानुजाचार्य व यमुनाचार्य के ग्रंथों से व तत्कालीन अभिलेखों से मिलती है। रामानुज के अनुसार कण्ठिका, रुद्राक्ष, कुण्डल, शिखामणि, यज्ञोपवीत और भस्म इनके लिये अनिवार्य षष्टमुद्रायें हैं। यमुनाचार्य इनमें दो उपमुद्रायें जोड़ देते हैं, जो हैं – खट्वांग और कपाल। इन वैरागियों के लिये परामुद्राविशारद होना आवश्यक है। तंत्र साधना की पुस्तकों के अनुसार पंच-मकार साधना के लिये अनिवार्य हैं – मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। भगासन में बैठ कर आत्म-मंथन इनकी योग साधना का प्रमुख अंग है। भग शब्द का सम्बन्ध ख-धातु व शून्य से होता है, व इसे प्रज्ञा का नारी रूप में निरूपण माना जाता है। इस अर्थ में देखने पर वैरागियों के लिये निर्धारित भगासन का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। पाशुपतों के श्री भाष्य के अनुसार लौकिक व पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिये कपाल धारण करना, भस्म स्नान, भस्म भोग, लकुट धारण करना, और सुरापात्र से देवपूजा करना अनिवार्य बताया गया है। यह विवरण कापालिकों पर अधिक सटीक बैठता है। क्योंकि कालामुखों के लिये लकुट धारण करना व भस्म राग अधिक उपयुक्त है, जैसा की पाशुपत सूत्र में भी लिखा है। इसके विपरीत कापालिक त्रिशूल या खट्वांग धारण करते हैं, और मद्यपात्र से पूजा व कपाल को पात्र बना कर उसमें भोजन करना इनकी विशिष्ट पहचान है। कुलार्नव तंत्र के अनुसार कापाल व्रत की दीक्षा ले लेने के बाद विप्र व शूद्र

का भेद समाप्त हो जाता है। इनका वर्णाश्रम व्यवस्था से विरोध स्पष्ट दिखाई देता है।

मध्य और उत्तर भारत के सन्दर्भ में देखें तो कापालिकों पर ध्यान केन्द्रित करना अधिक उपयुक्त होगा। कापालिन शब्द याज्ञवल्क्य स्मृति में मिलता है, पर वहाँ इसे ब्रह्म हत्या के दंड के रूप में दर्शाया गया है। ब्रह्म हत्या के दोषी के लिये कपाल धारण कर, दंड हाथ में लेकर भिक्षा माँगने का विधान था। प्राकृत ग्रंथ गाथा-सप्तशती में सातवाहन नरेश हाल (प्रथम विक्रमी शती) के राज्य में एक कापालिक व्रत धारक स्त्री का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है, जो शरीर पर अपने प्रेमी की चिता की भस्म का लेप लगा कर रहती थी। महाकवि बाण रचित हर्ष चरित और कादम्बरी में कापालिक अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है। उज्जयिनी की रानी विलासवती पुत्रेच्छा से चण्डिका के मन्दिर में निवास करती हैं, जहाँ गुग्गल का धुआँ भरा रहता है। वे घास पर शयन करती हैं। सिद्धों द्वारा निर्देशित चौराहे पर घेरे गये स्थान पर खड़ी रहती हैं, और अमावस्या के पहले की चतुर्दशी को सिद्धपीठ व मातृका मन्दिर में पूजा करती हैं। सायंकाल को श्रृगालों को माँस खिलाती हैं। प्रातःकाल ब्राह्मणों को अपने स्वप्न का विवरण सुनाती हैं, और चौराहे पर शिव को जल अर्पित करती हैं। इसी तरह कादम्बरी में एक द्रविड़-धर्मिका या पुजारी का उल्लेख है, जो कि चण्डिका की पूजा करता है, जिसके सारे शरीर पर आत्म-प्रतारणा के चिन्ह हैं, और जो तांत्रिक-मांत्रिक साधना करता है, व प्राचीन महापाशुपत ग्रंथों का अध्ययन करता है। इसी तरह हर्ष चरित में भी भैरवेश्वर नामक कापालिक का उल्लेख है, जो कि दाक्षिणात्य ब्राह्मण था, और हर्ष के पिता के समय उज्जयिनी आया था। इसका एक शिष्य टिटिभ भिक्षा-कापालिका धारण करता था। उज्जयिनी नरेश पुष्यभूति इनसे मिलने के लिये बिल्ववन में स्थित प्राचीन मातृका मन्दिर गये थे। भवभूति और दण्डिन की रचनाओं में भी कापालिकों का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व मध्यकाल में वामाचारी कापालिक समाज में स्वीकारे जाने लगे थे, और इन्हें राजाश्रय भी प्राप्त था। इन्द्रगढ़, राजस्थान के समीप स्थित कायावर्णेश्वर या क्वांलजी मन्दिर में मिले चहुमान राजा हम्मीर के शिलालेख से वहां कापालिकों की उपस्थिति का पता चलता है। यहाँ पर शिव का नाम कपालीश्वर लिखा गया है। ब्रह्महत्या के पाप के परिणामवश कापालिन बने शिव कापालिकों के दैवीय आदि-रूप कहे जा सकते हैं। कापालिन-शिव को कपालमोचन नामक तीर्थ पर भिक्षा-कपाल से मुक्ति मिली थी, यहाँ से प्राप्त एक शिलालेख में गहरवाल राजा द्वारा किये गये दान का उल्लेख है। शंकराचार्य ने भी भगवान शिव के दिगम्बर, भस्मांगराग लेपित न - स्वरूप (पृथ्वी तत्व) की वंदना की है। 'शंकर दिग्विजय' में शंकराचार्य का एक कापालिक उग्र भैरव से संवाद दार्शनिक प्रतिस्पर्धा का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवायः॥

इस काल में निर्मित मन्दिरों, यात्रा वृत्तान्तों, स्थापित मूर्तियों व शिल्प को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि बुन्देलखण्ड में चन्देल काल से पहले ही लकुलीश के पाशुपत दर्शन पर

आधारित कापालिक पंथ स्थापित हो चुका था। झालावाड़ जिले में स्थित गंगधार से प्राप्त हुये विश्ववर्मन (पाँचवीं शताब्दी) कालीन शिलालेख में कापालिकों का उल्लेख मिलता है। उज्जयिनी में चन्द्रगुप्त के समय प्रचलित हो चुके पाशुपत मत को कलचूरियों, कच्छपघातों व चन्देलों के राज्यकाल में और भी अधिक प्रोत्साहन मिला, जो कि कालिंजर, चित्रकूट, खजुराहो, गोरखगिरि, मडफा, त्रिपुरी, मितावली इत्यादि स्थानों पर बनी गजान्तक शिव प्रतिमाओं, चौंसठ योगिनी मन्दिर, मातृका व देवी प्रतिमाओं से स्पष्ट होता है। दक्षिण भारत में बनी लकुलीश प्रतिमाओं में उनका जो ऊर्ध्वलिंग दिगम्बर रूप देखने को मिलता है, वही रूप बुन्देलखण्ड की गजान्तक शिव प्रतिमाओं व चित्रार्धों में देखने को मिलता है। दक्षिण भारत से प्राप्त दिगम्बर शिव प्रतिमाओं में ऊर्ध्वलिंग देखने को नहीं मिलता है। नियमानुसार मातृकाओं के साथ दोनों कोनों पर स्थापित किये जाने वाले वीरभद्र व गणेश के भी अलग ही रूप शक्ति शिला पर देखने को मिलते हैं। इस क्षेत्र में कापालिक और नाथ सिद्ध परम्परा के योगियों, तांत्रिकों व साधकों की उपस्थिति का उल्लेख चीनी यात्रियों व इब्न-बतूता ने भी अपने यात्रा वृत्तान्तों में किया है (गिब्स, 1994)। लोक वार्ता में सिकन्दर के एक दिगम्बर हठयोगी सिद्ध से मिलने की कहानी भी प्रसिद्ध है, जिसमें योगी उसे जीवन की क्षण भंगुरता का पाठ पढ़ाता है।सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत की यात्रा करते हुये ह्वेन-सांग (ज़ुआन-झैंग) ने मालवा, सिंध और उसके आगे ईरान के समुद्री तट के किनारे-किनारे पाशुपत वैरागियों का उल्लेख किया है। उसके लिखा है कि अत्यनबकेला (कच्छ का क्षेत्र) और लांगल (बलोचिस्तान का दक्षिणी क्षेत्र) में महेश्वर के देव मन्दिर हैं, जहाँ पाशुपत वैरागी रहते हैं। ह्वेन-सांग से 200 वर्ष पहले भारत आये फाह्यान या ज़ैंगह्यान ने भी लगभग सभी स्थानों पर तांत्रिक योगियों की उपस्थिति का उल्लेख किया है। दक्षिण भारत की ओर जाते समय इब्न-बतूता ने नरवर (ग्वालियर) से खजुराहो के बीच योगियों का विस्तृत वर्णन किया है। इनके बारे में लिखते हुये उसने कहा है कि सुल्तान भी इनका सम्मान करता था, मुसलमान इनके शिष्य बन कर योग विद्या सीखते थे, और ये गुफाओं व कंदराओं में रहते हुये कठिन साधना में रत रहते थे। उसने एक योगिनी का भी उल्लेख किया है, जिसे दैवीय शक्तियां प्राप्त थीं।

शक्ति-शिला के चित्रार्धों की विवेचना करते समय हमें उपरोक्त तथ्यों का विशेष ध्यान रखना पड़ेगा, और इनके शिल्प की तत्कालीन अन्य प्रतिमाओं व चित्रार्धों से तुलना करनी पड़ेगी। तभी इनके गढ़े जाने के कारण व इनमें निहित गूढ़ार्थ का पता चलेगा।

चित्रार्ध विवरण –

चित्रार्ध, बाँयें से दाँयें	**वस्त्राभूषण व वाहन**	**आयुध दाँयें हाथ से बाँयें हाथ की ओर**	**अर्धगोलाकार**	**में क्रम से**	**1 2 3 4 (चामुण्डा के 10)**	**टिप्पणी**

गणेश	मुकुट, यज्ञोपवीत, कंकण व पैर में कड़े	1 कमल	2 अक्षमाल	3 मोदक	4 परशु	एकदन्त, नृत्य भंगिमा, सौम्य मुद्रा
चामुण्डा	मुण्डमाल, कुन्तल केश, कमरबन्ध आग्नेय प्रभावली, गले में सर्प, कंकण व पैर में कड़े, **शृगाल**	1 कपाल 2 खड्ग 3 कटार	4 त्रिशूल 5 डमरू	6 खट्वांग 7 दर्पण 8 हथेली वक्ष पर	9 सर्प 10 नरमुण्ड	कंकाली रूप, दस हाथ, टेक लिये हुये शिव पर नृत्य भंगिमा द्विभंगी मुद्रा उग्र
ब्राह्मी	मुकुट, कुण्डल, केयूर, कंकण, पैर में कड़े, **हंस**	1 कपाल	2 पुस्तक	3 अक्षमाल	4 श्रीफल	तीन मुख नृत्य भंगिमा, मुद्रा सौम्य
माहेश्वरी	मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, कंकण व पैर में कड़े, **वृषभ**	1 कपाल	2 त्रिशूल	3 अक्षमाल	4 पात्र	नृत्य भंगिमा मुद्रा सौम्य
कौमारी	मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, कंकण, पैर में कड़े, **मोर**	1 कपाल	2 दंड	3 शक्ति	4 अक्षमाल	तीन मुख सौम्य मुद्रा
वैष्णवी	मुकुट, कुण्डल, केयूर, कंकण व पैर में कड़े**, पुरुषरूप गरुड़**	1 गदा	2 चक्र	3 कपाल	4 शंख	नृत्य भंगिमा सौम्य मुद्रा
मुखलिंग	एकमुख, जटामुकुट कुंडल, कंठमाल					उत्तर मुखी अघोर रूप
वाराही	कंठमाल, हार, बाजूबन्द, कलाई व पैर में कड़े, **भैंसा**	1 कपाल	2 गदा	3 चक्र	4 शंख	वराह मुख, नृत्य भंगिमा सौम्य मुद्रा
यमी या यमुना	मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, कंकण व पैर में कड़े, **कच्छप**	1 कपाल	2 चक्र	3 अक्षमाल	4 श्रीफल	सूर्य पुत्री, कृष्ण की अष्टभार्यायों में से एक सौम्य
दिगम्बर शिव	विस्तृत विवरण आगे दिया है					
कालिका	कुन्तल केश,	1 कपाल	2 कटार	3 गदा	4 नरमुंड	कंकाली रूप, मुख से

(यह रूप डाकिनी का भी कहा जाता है)	मुण्डमाल, केयूर, कंकण व पैर में कड़े, **शव या प्रेतासन**					अग्नि वर्षा, उग्र, नृत्य भंगिमा,
महालक्ष्मी	मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, कंकण व पैर में पायल, **हस्ति**	1 ध्यान मुद्रा	2 कमल	3 ध्यान मुद्रा	4 कमल	दो गज अभिषेक करते हुये, पद्मासन

तालिका – 1 : शक्ति शिला पर बाँयें से दाँयें गणेश, मुखलिंग, दिगम्बर शिव व मातृका स्वरूप का उद्‌भृत तक्षण

देव/देवी वाहन, आयुध, भंगिमा व मुद्रा की प्रतीकात्मकता – भारतीय मूर्ति शिल्प शास्त्र एक अत्यन्त विकसित विज्ञान है। मूर्ति शिल्प और वास्तु के नियमों व सिद्धान्तों का विशद विवरण संस्कृत साहित्य में देखने को मिलता है (श्रीवास्तव, 1989, उपाध्याय, 1980, अचारी, 2015, राव, 1914, ब्यूह्लेमन, 2000, त्रिवेदी, 1996)।

वाहन –

श्रृगाल या ढोल – शिवदूती व चामुण्डा के वाहन

हंस – नीर-क्षीर विवेक, पवित्रता, सौन्दर्य, और निर्लिप्तता

नन्दी – शक्ति-संपन्नता और कर्मठता। चतुष्पदीय धर्म – सत्य, तप, दया, दान। साथ ही यह काम-ऊर्जा का भी प्रतीक है, जिसे वश में रखना अतिआवश्यक है। इस ऊर्जा को सही दिशा देना तभी सम्भव है जब शिव की तरह इस पर आरूढ़ होकर अपने वश में रखा जाये।

मोर – वैभव और गरिमा। साथ ही अहंकार – जिस पर आरूढ़ होकर उसे वश में करना आवश्यक है।

गरुड – तीन वेदों की अभिव्यक्ति व साहस का प्रतीक।

भैंसा – अज्ञान – जिस पर आरूढ़ होकर मिटाना आवश्यक है।

कच्छप – दीर्घ आयु, आत्म केन्द्रित हो कर आत्मरक्षण का प्रतीक।

शव – अस्तित्वहीन (प्रेतासन प्रतीक है, शक्ति द्वारा लौकिक अस्तित्व के भक्षण का)।

गज – सम्पन्नता का प्रतीक।

आयुध – प्रतिमाओं व उद्‌भृत तक्षण में देवी/देवताओं के हाथों में आयुध देखने को मिलते हैं। ये मानव के अमूर्त भावों का मूर्त रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय मूर्ति विज्ञान में इनकी प्रतीकात्मक का दार्शनिक महत्व है। नीचे उन आयुधों का विवरण दिया जा रहा है, जो शक्ति-शिला के उद्‌भृत तक्षण में देखे जा सकते हैं।

कपाल – मानव खोपड़ी का पान पात्र, जिसे धारण करने वाला आत्मानन्द का पान सतत करता रहता है। यह अहंकार, भ्रान्ति और अज्ञान का भी प्रतीक है।

खड्‌ग – बुद्धिमत्ता और विवेक का प्रतीक है जो हमारे

अन्दर स्थित अज्ञान व माया का विनाश करती है। इसका उपयोग बहुत कौशल व सुनिश्चितता से करना चाहिये।

खट्वांग – अस्थायित्व, विलयन और योग की रहस्यमयी शक्ति का प्रतीक है।

त्रिशूल – क्रिया, विचार व वचन पर नियंत्रण का प्रतीक है। साथ ही मुक्ति के तीन साधनों, भक्ति, ज्ञान और कर्म को भी दर्शाता है। दैविक, दैहिक, भौतिक दुखों के मूलोच्छेदन का प्रतीक है।

डमरू – यह पुरुष व स्त्री तत्व की युति का व नाद से सृष्टि के विक्षेप को दर्शाता है। जब इसके दो भाग विलग हो जाते हैं, तब ध्वनि और सृष्टि का लोप हो जाता है।

मुंडमाल – समय के सतत चालायमान रहने का प्रतीक है। नाम और रूप की अस्थायी प्रकृति व अंहकार का रूप भी दर्शाता है। ये प्रतीक हैं, उस झूठे चेहरे के, जो मनुष्य अपने आप पर थोपे रहता है।

परशु – भौतिक जगत व उसके बंधनों से विमोह व विमुक्ति का प्रतीक है।

मोदक – पद्म पुराण के अनुसार मोदक प्रतीक है 'महाबुद्धि' का; कहीं-कहीं इसे मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं, भोजन, वसन और आश्रय का प्रतीक भी माना जाता है।

कमल पुष्प – यह स्वयंभू या स्वतःप्रवर्तित का प्रतीक है। अधखिला कमल पुष्प अन्तर्निहित सम्भावनाओं का प्रतीक है, और खिला हुआ कमल उन सम्भावनाओं के यथार्थीकरण को प्रदर्शित करता है। यह सम्पन्नता के साथ सांसारिक निर्लिप्तता का प्रतीक भी है।

चक्र – यह संसार-चक्र व धर्म का प्रतीक है। यह कष्टदायी भावनाओं को शमित करने वाले सर्वव्यापी ब्रह्म का भी प्रतीक है।

सर्प – कुंडलिनी, मूलाधार में स्थित काम ऊर्जा का प्रतीक है। क्रोध व नकारात्मक विचारों पर नियंत्रण को दर्शाता है।

पात्र – यह चेतना के उच्च स्तर का प्रतीक है, और स्वधारणा के भाव व तुच्छ विचारों से मुक्ति का साधन है। ऋषियों व बुद्ध के हाथ में भिक्षापात्र।

कटार या छुरी – यह सावधानी और सतर्कता का प्रतीक है, क्योंकि आत्मिक पथ के यात्री का पथ तेज धार पर चलने के समान कठिन होता है।

गदा – संप्रभुता व ब्रह्मांडीय सत्ता का प्रतीक है। कर्म के कारण व प्रभाव के सम्बंध को दर्शाता है। क्रिया शक्ति का द्योतक।

अक्षमाल – साधना, ध्यान, आध्यात्मिक अभ्यास व मंत्रोच्चार का प्रतीक है।

पुस्तक – वेद। ज्ञान व सिद्धान्त का अध्ययन।

दर्पण – यह क्षणभंगुर जीवन का प्रतीक है। सिद्ध साधक संसार को मस्तिष्क के दर्पण में दिखने वाले प्रतिबिम्ब जैसा ही समझता है। दर्पण निर्मल बुद्धि का प्रतीक है, जिसमें जगत प्रतिबिम्बित तो होता है, पर निहित नहीं होता है।

शंख – प्रणवाक्षर ॐ का प्रतीक है, और आठ प्रकार कि अविद्याओं से संघर्ष करने के लिये आवश्यक धर्म-शिक्षा के प्रसार का साधन है। नाद ब्रह्म व संसार की उत्पत्ति का प्रतीक।

अंकुश – क्रोध व इन्द्रियों पर विजय। गुरु व उसकी शिक्षा के प्रति निष्ठा। आचार-विचार पर नियंत्रण्।

शक्ति या कुंत – यह एकाग्रता का प्रतीक है। यह क्रोध, लोभ जैसे मतिभ्रम के दानवों से मुक्ति पाने के लिये एकाग्र विचार या साधना का भी प्रतीक है।

श्रीफल – यह लक्ष्मी का प्रतीक है।

मुद्रा व भंगिमा – भावों को हस्त व पाद भंगिमाओं, एवम मुख मुद्राओं द्वारा मूर्ति शिल्प में प्रदर्शित किया जाता है।

अभय – भगवान शिव का ऊपरी बाँया हाथ इस मुद्रा में है। यह मुद्रा निर्भय, सुरक्षा, शान्ति और परोपकार दर्शाती है।

वरद – यह मुद्रा आशीर्वाद, दान, दया की प्रतीक है। शिव चित्रार्ध में सबसे नीचे के दाँये हाथ को इस मुद्रा में दिखाया गया है।

गोपन – भगवान शिव की गोपन मुद्रा, जिसमें बाँयें हाथ की हथेली को अधोमुख कर के दाँये हाथ में लिये हुये कपाल के ऊपर रखा हुआ है। यह माया के आवरण का प्रतीक है, जो लौकिक जगत को घेरे रहती है। लगभग इसी मुद्रा में चामुण्डा के बाँये हाथ की हथेली भी वक्ष के ऊपर अधोमुख रखी हुई बनाई गई है।

ध्यान – हाथों की इस मुद्रा में दाँई और बाँई हथेली को गोदी में एक के ऊपर एक करके रखते हैं। यह मुद्रा एक स्थान पर पद्मासन में बैठ कर ध्यानरत होते समय अपनाई जाती है। शक्ति-शिला के चित्रार्धों में यह मुद्रा महालक्ष्मी द्वारा अपनाई गई है। इसे योग मुद्रा भी कहते हैं।

नृत्यारम्भ की अर्धमण्डली भंगिमा – महालक्ष्मी के अतिरिक्त शक्ति-शिला के अन्य सभी चित्रार्ध नृत्य की आरम्भिक भंगिमा में हैं, पर कटि भंग चामुण्डा को छोड़ कर, अन्य सभी के केवल घुटने मुड़े हुये हैं। अभंग प्रतिमायें स्थिरता की प्रतीक हैं तो त्रिभंग या द्विभंग प्रतिमायें नृत्य की गतिशीलता की प्रतीक हैं। नृत्य की भंगिमाओं का उपयोग लास्य, आनन्द व अन्य भाव प्रदर्शन के लिये नृत्य व नाट्य शास्त्र में भी किया जाता है। नृत्य करते हुये सभी के दाँये पैर की उंगलियाँ भूमि का स्पर्श कर रही हैं, जब कि बाँये पैर का तलवा भूमि पर टिका हुआ है। यह लयबद्ध तरलता और चेतना की ऊर्जा के प्रतीक हैं। भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैली में नृत्यारम्भ की इस भंगिमा को अर्धमण्डली कहते हैं। इसमें नर्तक हाथ और पैरों से एक आयताकार मँडल में चार त्रिकोणों की ऐसी संरचना बनाता है, जिनके शीर्ष नाभि के अक्ष पर मिलते हैं। इस भंगिमा में नर्तक के सिर से नाभि के बीच की दूरी और पृथ्वी से नाभि की दूरी समान होती है। इस मण्डल में शरीर का नाभि क्षेत्र ब्रह्माण्डीय अक्ष बन जाता है, जो पृथ्वी और आकाश, या जीव और ब्रह्म के मध्य तादात्म्य स्थापित करने के लिये आवश्यक है, जैसा कि नीचे के चित्र से स्पष्ट होता है।

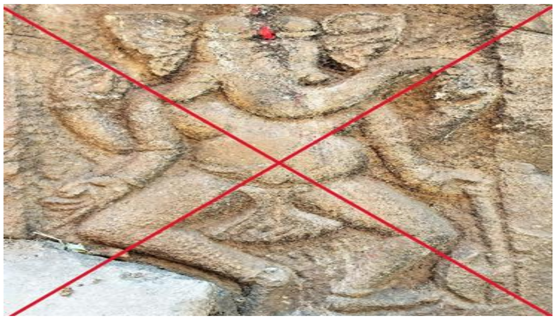

चित्र 1 – अर्धमण्डली भंगिमा - आयताकार मण्डल में चार त्रिकोण, नाभि पर ब्रह्माण्डीय अक्ष

Publisher: Maharaja Chhatrasal Bundelkhand University, Police Lines Road, Panna Road Chhatarpur (M.P) - 471001

ऊर्ध्व लिंग (ऊर्ध्वरेतस) – पाशुपत दर्शन के संवाहक लकुलीश को अधिकतर ऊर्ध्व लिंग स्वरूप में दर्शाया जाता है। वे भगवान शिव के वैरागी रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। विद्वानों के अनुसार ऊर्ध्व लिंग का कामुक अर्थ न लेकर, इसको ब्रह्मचर्य की प्रतीकात्मकता को समझना चाहिये। यह लकुलीश के इन्द्रिय निग्रह को दर्शाता है, और संसारी सुखों के परे उनके वैराग्य का प्रतीक है। वैरागी काम भावना को, जो कि सन्तानोत्पत्ति के लिये आवश्यक है, दबाने के स्थान पर उसका अन्तर्ज्ञान पाने के लिये उपयोग करता है। यह काम-ऊर्जा का निष्काम-ऊर्जा में रूपांतरण है, जो कि तन्त्र साधना के मूल में है।

दिगम्बर – ब्रह्म से ब्रह्मांड का उदय होता है। ब्रह्मांड पर काल या माया का आवरण रहता है। ब्रह्मांड की समाप्ति पर काल या माया का विलोप हो जाता है, तब ऐसे में शून्य ही ब्रह्म का आवरण होता है। अर्थात माया का लोप हो जाने पर ब्रह्म का दिगम्बर स्वरूप प्रकट होता है।

एकदन्त – एकाग्रता का प्रतीक।

चित्रार्ध विवरण –

महालक्ष्मी – शिला के बाँये कोने में पहला चित्रार्ध महालक्ष्मी का है। यह महालक्ष्मी की योगमूर्ति है। योगमूर्ति की स्थापना नदी के तट पर, जंगल व पर्वत पर करने का प्रावधान है। महालक्ष्मी को मातृकाओं में सम्मिलित करने का प्रचलन नेपाल में अधिक है। इनकी ध्यानमग्न मुद्रा सौम्य है। ऊपर के दोनों हाथों में निर्लिप्तता और समृद्धि का प्रतीक कमल पुष्प है।

कालिका या डाकिनी – शवासन या प्रेतासन पर अर्धमण्डली नृत्य भंगिमा में देवी के चार हाथों में कपाल, कटार, गदा और नरमुण्ड हैं। इनके मुख से अग्नि की ज्वाला निकल रही है। कंकाल रूप में देवी का स्वरुप उग्र है, नृत्य भंगिमा में दाँये पैर की उंगलियाँ भूमि पर टिकी हैं, जब कि बाँये पैर का पंजा पूरा टिका हुआ है। मुण्डमाल, बाजूबन्द, कलाई व पैरों में कड़े, और कानों में कुण्डल इनके आभूषण हैं। काली के एक रूप कालरात्रि में उनके नासिका व मुख से प्रज्वलित ज्वाला प्रवाहित होते हुये चित्रित करने का विधान है। यह रूप इस चित्रार्ध में दिखाई देता है। कालरात्रि के हाथों में कपाल पात्र, कटार या छुरी और नरमुंड भी यहाँ दिखाई देते हैं। सामान्य रूप से इनका वाहन गदहा कहा जाता है, पर यहाँ पर शव या प्रेत उनके पैरों के नीचे चित्रित किया गया है। इन्हें शुभफलदात्री और नकारात्मक ऊर्जा विनाशिनी माना जाता है।

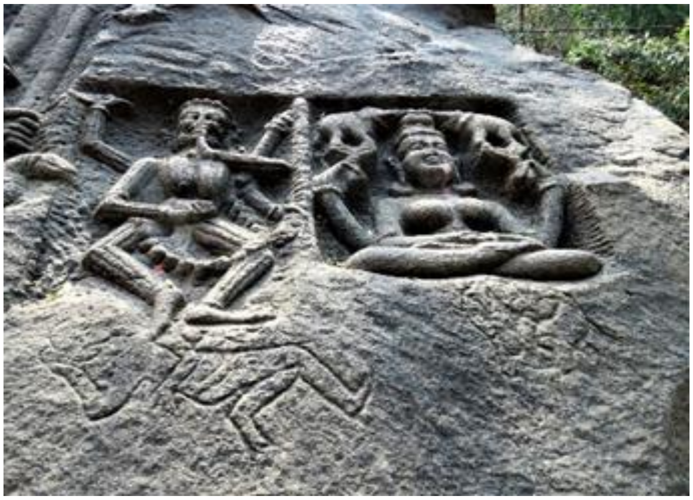

कालिका और महालक्ष्मी

दिगम्बर ऊर्ध्वलिंग कापालिक शिव

शिला के पश्चिमी फलक पर अनियमित आलय बना कर, उसमें दिगम्बर ऊर्ध्वलिंग शिव चित्रार्ध गढ़ा गया है। शक्ति-शिला पर टंकित यह सबसे बड़ा चित्रार्ध है। इसके नीचे छोटे-छोटे आलयों में नन्दी, प्रार्थनारत राजा-रानी एवं एक अन्य स्त्री के चित्रार्ध हैं। शिव के दस हाथों में दाँये से क्रमशः नीचे से ऊपर, व बाँई ओर ऊपर से नीचे की ओर आयुध इस प्रकार से स्थित हैं – वरद मुद्रा, अक्षमाल, कपाल, त्रिशूल, डमरू, अभय मुद्रा, खट्वांग, कपाल के ऊपर गोपन मुद्रा में बाँये हाथ की हथेली, शक्ति या कुंत, और सर्प। अर्धमण्डली नृत्य भंगिमा में शिव की मुख मुद्रा सौम्य है। दिगम्बर होने पर भी शिव विभिन्न आभूषणों से सज्जित हैं। शक्ति-शिला के चित्रार्धों की विशेषता है कि मातृकाओं के साथ सामान्यतः चित्रित होने वाले वीरभद्र के स्थान पर शिव का सौम्य ऊर्ध्वलिंग दिगम्बर स्वरूप और उसके अतिरिक्त एक मुखलिंग गढ़ा गया है। कापालिक शिव की नृत्य भंगिमा में लास्य है, यह उनका संहारक नृत्य न होकर, उल्लास में किया गया नृत्य है, जिसमें वे भक्त साधक को अभय का वरदान दे रहे हैं। शिव के साथ नन्दी की उपस्थिति स्पष्ट कर देती है कि यहाँ पर भगवान का शिव-स्वरूप ही चित्रित किया गया है, न कि भैरव या वीरभद्र रूप, जिनके कि वाहन भिन्न होते हैं।

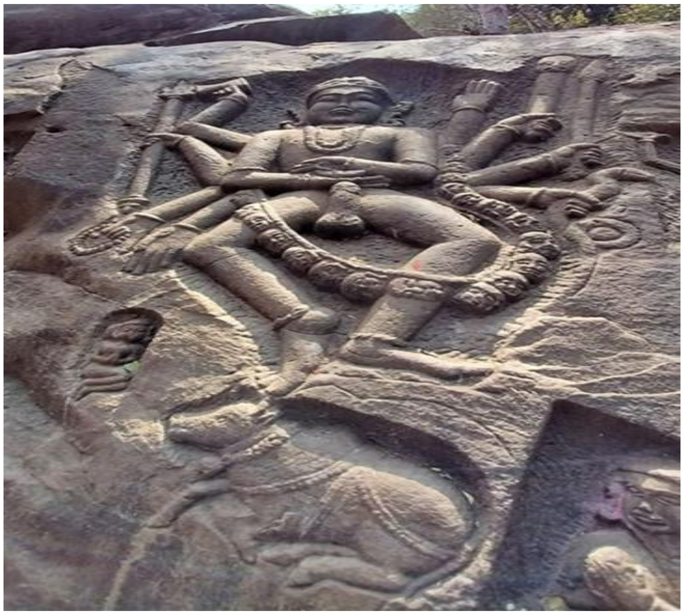

	दाईं ओर नीचे से	**बाईं ओर ऊपर से**	
जटामुकुट, कुण्डल, हार व मालायें, केयूर, कंकण, मुण्डमाल, पैरों में कड़े, हस्त-अंगुष्ठ में छल्ले, नन्दी	1 वरद	6 अभय	दिगम्बर, ऊर्ध्वलिंग, दस भुजायें, भाव सौम्य, नृत्य मुद्रा, आराधनारत राजा-रानी बायें हाथ की ओर, एक स्त्री दायें हाथ की ओर
	2 अक्षमाल	7 खट्वांग	
	3 कपाल	8 हथेली कपाल को ढंके हुये	
	4 त्रिशूल	9 शक्ति	
	5 डमरू	10 सर्प	

तालिका 2 : शक्ति-शिला पर ऊर्ध्वलिंग दिगम्बर शिव चित्रार्ध वर्णन

यमी या यमुना – सप्त या अष्ट मातृकाओं के कतिपय विवरणों में यमी को जोड़ा गया है। इनके आयुध व वाहन यम के सदृस्य ही दिखाने का विधान भी लिखा गया है। यम के सदृश्य उनके आयुधों में पाश और वाहन के रूप में भैंसे को दिखाने का प्रावधान दिया गया है। किन्तु शक्ति शिला की यमी, अपने कच्छप वाहन व आयुधों के कारण वैष्णवी शक्ति यमुना (जिनका चित्रण त्रिपुरी के 64-योगिनी मन्दिर में किया गया है) का स्वरूप दिखाई देती हैं। कृष्ण की एक पटरानी कालिंदी को यमुना नदी का रूप मान लेने पर, उनके हाथों में विष्णु के आयुध देखने को मिलते हैं। जैसा कि शक्ति शिला के मातृका चित्रार्धों के विवरण में लिखा जा चुका है कि यहाँ की विशेषता सभी मातृकाओं के दाँये या बाँये हाथ में कपाल का होना है। केवल महालक्ष्मी योगमुद्रा में होने के कारण कपाल धारण नहीं किये हैं। यमुना के दाँये हाथ में कपाल व चक्र, और बाँये हाथ में अक्षमाल और श्रीफल है। चक्र विष्णु का, अक्षमाल ब्रह्मा, और श्रीफल लक्ष्मी के श्री रूप का प्रतीक है। केंट डेविस (2010) के अनुसार भेड़ाघाट के 64-योगिनी मन्दिर में श्री यमुनी व श्री जान्हवी का निरूपण उनके वाहन कच्छप व नक्र के साथ किया गया है। सम्भावना है कि ये वहाँ विष्णु (कृष्णावतार के सन्दर्भ में यमुना या कालिन्दी) व शिव (गंगा या जान्हवी) की शक्ति से अवतरित हुई योगनियां हों। क्योंकि मातृकाओं को योगनियों से विलग करके देखना कठिन है। **वाराही** – भगवान विष्णु के वराह अवतार से उत्पन्न देवी वाराही के हाथों में क्रमशः कपाल, गदा, चक्र और शंख हैं। गले, पैर और बाजुओं में आभूषण हैं, और उन्होंने अपना मुख बाँई ओर मोड़ा हुआ है। वाराही नृत्य की अर्धमण्डली भंगिमा में खड़ी हुई हैं। इनका वाहन भैंसा उत्कीर्ण किया गया है।

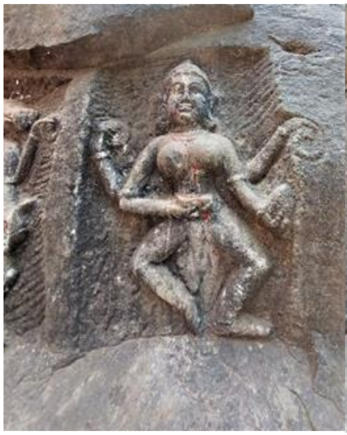

यमुना

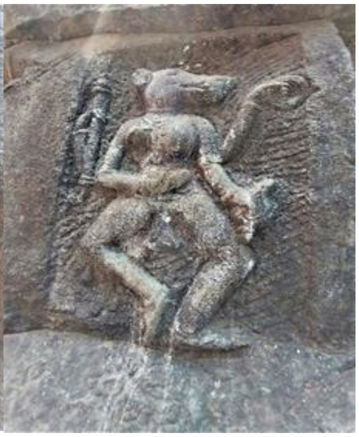

वाराही

मुखलिंग – वाराही के दाँये हाथ की ओर उत्तर दिशा में मुखलिंग चित्रार्ध गढ़ा गया है। पंचमुखी या चतुर्मुखी शिवलिंग को मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से बनाने के लिये जो नियम दिये गये हैं, उनके अनुसार शिवलिंग के चारों ओर भगवान शिव के चार रूपों का दिशा की दृष्टि से निरूपण करना चाहिये। यदि यह लिंग मन्दिर के अन्दर स्थापित हो तो प्रत्येक मुख के सामने द्वार होना चाहिये। उनके ईशान रूप का प्रतिरूप पाँचवा मुख नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि वह सन्यासियों के लिये भी अगम्य है।

उत्तर दिशा के मुख को शिव का अघोरी रूप माना जाता है, व अन्य दिशाओं के मुखों को तत्पुरुष, सद्योजात, और वामदेव कहते हैं।

वैष्णवी – भगवान विष्णु की शक्ति वैष्णवी मानव शरीरधारी गरुड़ पर विराजमान हैं। उनके चार हाथों में गदा, चक्र, शंख और कपाल हैं। अन्य चित्रार्धों से अलग

इनके बाँये हाथ में कपाल बनाया गया है। इनके कानों, गले, बाजुओं और पैरों में आभूषण हैं। मुद्रा सौम्य है।

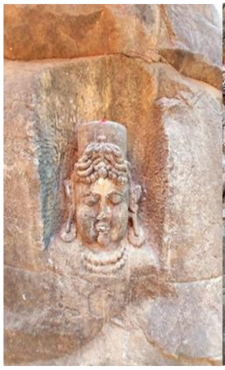

मुखलिंग

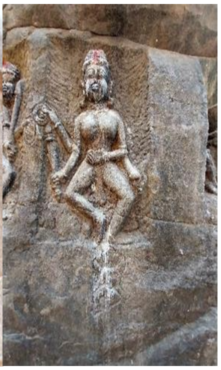

वैष्णवी

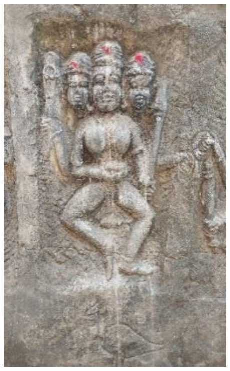

कौमारी

कौमारी – षड़ानन कुमार की शक्ति कौमारी के तीन मुख बनाये गये हैं। शरीर पर आभूषण हैं। मुद्रा सौम्य है। हाथों में कपाल, दण्ड, अक्षमाल, और शक्ति हैं। नीचे इनका वाहन मयूर उत्कीर्ण किया गया है।

माहेश्वरी – वृषभ वाहिनी माहेश्वरी के हाथों में कपाल, त्रिशूल, अक्षमाल, और पात्र हैं।

ब्रह्माणी – ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी के तीन मुख बनाये गये हैं। इनके हाथों में कपाल, पुस्तक, अक्षमाल, और श्रीफल हैं। चित्रार्ध के नीचे इनका वाहन हंस उत्कीर्ण किया गया है।

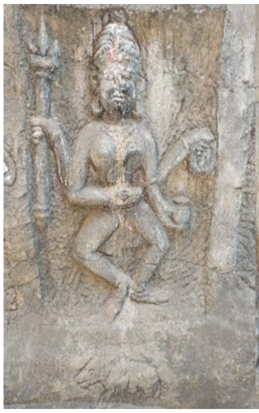

माहेश्वरी

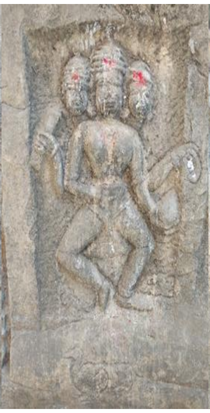

ब्रह्माणी

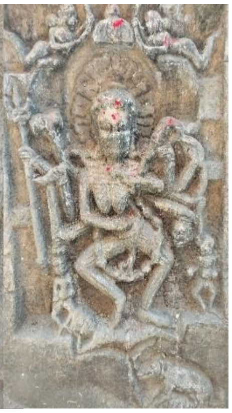

चामुण्डा

चामुण्डा – यह श्मसान भूमि में शिव के शव पर नृत्यरत महाकाली का दस हाथों वाला चित्रार्ध है। यही कारण है कि इस रूप में चित्रार्ध के नीचे श्रृगाल या ढोल जैसे माँसभक्षी पशु का चित्रण किया गया है। सामान्य रूप से निर्देश है कि शिवदूती के साथ श्रृगाल और चामुण्डा के साथ ढोल का उत्कीर्णन करना चाहिये। चूंकि दोनों लगभग एक से दिखते हैं, अतः यहाँ उकेरे गये हिंस्र पशु को ढोल भी मान सकते हैं, क्योंकि यह शिवदूती का रूप तो निश्चित ही नहीं है। मुंडमाल धारण किये हुये देवी के पाँच दाँये हाथों में कपाल, खड्ग, कटार, त्रिशूल, डमरू, और पाँच बाँये हाथों में खट्वांग, सर्प, दर्पण, गोपन मुद्रा में एक हथेली वक्ष के ऊपर, और नरमुंड हैं। देवी के सिर के पीछे आग्नेय प्रभावली है। गले में सर्प लिपटा हुआ है, और कान, कलाई, कमर और पैरों में आभूषण हैं।

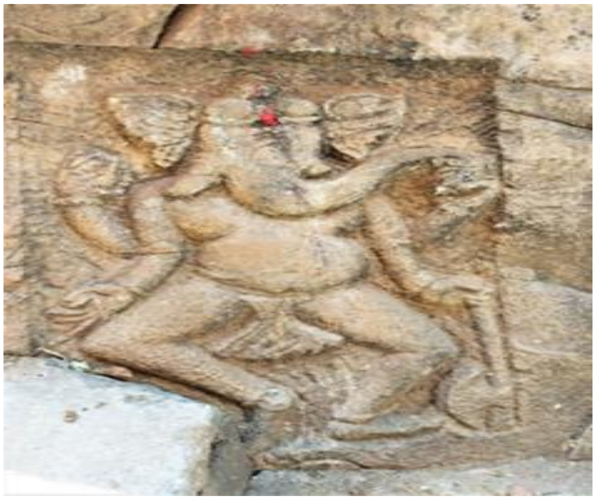

गणेश

गणेश – शिला में एक चौकोर खांचा काट कर मध्य में नृत्य गणेश का चित्रार्ध उकेरा गया है। इनके हाथों के आयुध क्रमशः कमल, अक्षमाल, मोदक और परशु हैं, जो

कि सामान्यतः मूर्तिशास्त्र के सिद्धान्तों की दृष्टि से सही है। रूपमण्डन में एक हाथ में टूटा हुआ दाँत होना चाहिये, जब कि यहाँ पर उस हाथ में अक्षमाल है। उनका बाँया दाँत टूटा हुआ है। मुख मुद्रा सौम्य है, व पाद संचालन में नृत्यारम्भ की अर्धमण्डली भंगिमा दिखाई दे रही है।

शक्ति शिला के चित्रार्धों के विशिष्ट गुण –

1. मातृकाओं, गणेश व शिव की अर्धमण्डली नृत्य भंगिमा।
2. महालक्ष्मी की योग या ध्यान मुद्रा।
3. महालक्ष्मी और गणेश के अतिरिक्त सभी के हाथ में कपाल।
4. चामुण्डा व कालिका के अतिरिक्त सभी की मुद्रा सौम्य है।
5. महालक्ष्मी नेपाल की अष्ट मातृकाओं में अधिक प्रचलित हैं। सम्भवतः यह प्रभाव कापालिकों व नाथ सिद्धों के नेपाल से घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण हुआ हो।
6. मध्य में उत्तरमुखी मुखलिंग – जो कि शिव का अघोर रूप माना जाता है।
7. चामुण्डा के दो रूपों का चित्रण – पुरुष और शव या प्रेत के ऊपर नृत्य रत उग्र देवी, शवासन या प्रेतासन रूप को भेड़ाघाट में डाकिनी लिखा गया है। इस रूप को कालिका भी कहा जाता है। चामुण्डा रूप में इनके पैरों के नीचे पुरुष है, और साथ में ढोल या श्रृगाल चित्रित किया गया है।
8. यदि यमुना को योगिनी मान लें तो अष्ट मातृकाओं और एक योगिनी का चित्रण है। इनमें इन्द्राणी अनुपस्थित हैं।
9. सम्भावना है कि इन्द्राणी की अनुपस्थिति शाक्त-शैव परम्परा में इन्द्र के घटते महत्व की ओर इंगित करती है।
10. ग्रन्थों में मातृकाओं के दोनों ओर वीरभद्र और गणेश स्थापित करने का विधान है। यहाँ पर वीरभद्र के स्थान पर ऊर्ध्वलिंग, दस हाथ वाले दिगम्बर शिव की अर्धमण्डली नृत्यारम्भ भंगिमा व सौम्य मुद्रा महत्वपूर्ण है। साथ ही नीचे का दाँया और ऊपर का बाँया हाथ वरद व अभय मुद्रा में होना, मातृका मूर्ति शिल्प के नवीन सिद्धान्त की ओर या स्थानीय वैरागियों की साधना पद्धति व उसके परिणाम की इच्छा की ओर इंगित करता है।
11. मूर्ति शिल्प की दृष्टि से इस क्षेत्र की सभी मूर्तियों व चित्रार्धों में गाल व ठोढ़ी गोल उभार लिये हुये बनाये गये हैं। मुखाकृति गोल है, और आँखें बड़ी-बड़ी बनाई गई हैं।

तन्त्र दर्शन में शिव और शक्ति का निरूपण – तान्त्रिक व आगम परम्परा में परा शक्ति को शवासन पर बैठे या उस पर नृत्य करते हुये चित्रित किया जाता है। शक्ति के सहचर शिव के निर्गुण अमूर्त स्वरूप का शव के रूप में मूर्त चित्रण करने के पीछे का दर्शन अत्यन्त प्राचीन है। शाक्त व तन्त्र परम्परा में शव और उसकी प्रतीक सामग्री का देवी के आसनों के रूप में मूर्ति शिल्प में निरूपण किया गया है। तन्त्र में शव के रूप में शिव और सती के रूप में शक्ति की अवधारणा ही नहीं है, वरन परा शक्ति को दो विरोधी ध्रुवों के मध्य सेतु का काम करते हुये दर्शाया गया है। मृत्यु और जीवन, तत्व और आत्मा, जड़ में चेतन और गतिशील चेतन, ऐसे विपरीत हैं, जिन्हें दैवीय शक्ति स्फूर्त करती है। योगी को सिखाया जाता है कि वह अपने शरीर

Publisher: Maharaja Chhatrasal Bundelkhand University, Police Lines Road, Panna Road Chhatarpur (M.P) - 471001

को शव ही माने। यदि आत्मा और शरीर को एक दूसरे से भिन्न वास्तविकता मानें तो चेतना और भौतिक तत्व द्वंद्वमयी हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार अस्तित्व के दो तत्व हैं – पुरुष और प्रकृति, जो क्रमशः चेतना एवं आत्मा, और भौतिक शरीर एवं इन्द्रियों के कारक हैं। इसलिये यदि शरीर जड़ है तो जीवित व मृत शरीर में अन्तर ही क्या है? लेकिन विद्वानों का मत है कि प्रकृति जड़ होकर भी स्फूर्त और सक्रिय है। सांख्य दर्शन का शिव के शाक्त-तांत्रिक शव-वत निरूपण पर गहरा प्रभाव पड़ा है। महानिर्वाण तन्त्र के अनुसार परम तत्व शव-वत निश्चेष्ट द्दष्टा है, जो कि सांख्य दर्शन में पुरुष है। निश्चेष्ट द्दष्टा प्रकृति का नृत्य देखता रहता है, पर सृष्टि निर्माण के उसके नृत्य में भागीदार नहीं होता है। सृष्टि निर्माण के पश्चात प्रकृति अपनी निष्क्रीय अवस्था में वापस लौट जाती है, जो उसकी मूल जड़ अवस्था है। इस से हमें शव का दूसरा स्वरूप मिलता है। बात यहीं समाप्त नहीं होती, क्योंकि प्रकृति का तीसरा रूप भी देखने को मिलता है, जो कि और भी अधिक जटिल है। यदि प्रकृति निष्प्राण है तो उसमें और शव में अन्तर ही क्या है? इसलिये पुरुष के सामने नृत्यरत प्रकृति नृत्यरत-कंकाल ही तो है। "सांख्य दर्शन के अनुसार ब्रह्मॉंड दो मूल तत्वों से निर्मित है - चेतना और ऊर्जा या शक्ति। ऊर्जा का घनीभूत रूप ही तत्व है। कोई भी ऐसा भौतिक तत्व नहीं है, जिसमें चेतना का अभाव हो। और कोई भी चेतन तत्व ऐसा नहीं है जो शक्ति के स्त्रोत के अभाव में अस्तित्व में रह सके" (व्हाइल दि गाड्स प्ले, डेनिलू से उद्धृत – अन्वय मुखोपाध्याय,1988)। सांख्य और तंत्र में एक अन्तर उभर कर सामने आता है। सांख्य में प्रकृति के नृत्य का द्दष्टा पुरुष है, और उनमें पारस्परिक निर्भरता है। जब कि तन्त्र सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति का नृत्य स्वकीय और आत्मानन्द हेतु है, जिसका दर्शन प्रकृति की इच्छा के बिना असम्भव है। तांत्रिक की द्दष्टि में महाशक्ति का स्वरूप तत्व व आत्मा में निहित ऊर्जा का विशाल नृत्यरत पुंज है, जो चाहने पर कंकाल रूप में भी गतिमान रह सकता है। सांख्य के द्वैत से भिन्न तन्त्र का सैद्धान्तिक स्वरूप अधिक जटिल है। जगत्माता का यह स्वतंत्र चेतन-ऊर्जा रूप दार्शनिक स्तर पर कंकाल या मृत शरीर की दैहिकता को बदल देता है, क्योंकि शरीर मूल रूप से कंकाल ही तो है। महाकाली अस्तित्व का भक्षण करके, अहं के अस्तित्व से रहित कंकाल को अपना आसन बनाती हैं। शव साधना वामाचारी कापालिकों की विशेष साधना प्रक्रिया है, जिसमें उत्तम कोटि के साधकों के लिये पंच मकार – मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन आवश्यक बताये गये हैं। यह प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग की ओर जाने वाला मार्ग है। पर यह मार्ग इतना दुष्कर और आत्मनियंत्रण वाला मार्ग है कि इसे केवल गुरु के निर्देशन में वीर और दिव्य साधक द्वारा करने का प्रावधान है। वाममार्गीय पंचमकार साधना में भटकाव की सम्भावना बहुत अधिक है। सामान्य साधक के लिये दक्षिणमार्गी साधना पद्धति का उल्लेख किया गया है। प्रबोध चन्द्रोदय नाटक (प्रसाद, 1935) में कापालिक स्वयं कहता है कि नरमुंड माल मेरा आभूषण, श्मसान भूमि मेरा आवास, और कपाल पात्र से भोजन मेरा धर्म है। मैं ईश्वर से अलग भी हूँ,

और उससे एकाकार भी हूँ, क्योंकि मैंने उसे योग की आँखों से देखा है।

निष्कर्ष – शक्ति-शिला के चित्रार्धों का मूर्ति शिल्पशास्त्र की दृष्टि से एवं दार्शनिक स्तर पर विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इन पर कापालिक व सिद्ध परम्परा के वैरागियों का गहरा प्रभाव है। ऐतिहासिक रूप से यह क्षेत्र पाशुपत मार्ग के स्थापक लकुलीश को भगवान शिव का अवतार मानने वाले पंथों का गढ़ था। यहां के शासक भी उस मत के मानने वाले और उनसे सम्बन्धित सन्यासियों व वैरागियों के आश्रयदाता थे। मालवा के शासक भर्तहरि ने तो स्वयं अपना राज्य छोटे भाई विक्रमादित्य को देकर इस पंथ की दीक्षा ले ली थी। हम पाते हैं कि परमार, कलचूरी, वाकाटक, भारशिव व चन्देल राज्य में लकुलीश की शाक्त-शैव परम्परा को सर्वाधिक प्रश्रय मिला था। शाक्त-शैव तांत्रिक दर्शन का प्रभाव उनके द्वारा निर्मित मन्दिरों में स्पष्टरूप से दिखाई देता है। दक्षिणाचारी व वामाचारी योग एवं उनकी पंचमकार साधना पद्धति का निरूपण इस क्षेत्र के मन्दिर शिल्प में प्रमुख रूप से किया गया है।

चित्रकूट स्थित अनुसूया आश्रम के समीप शक्ति-शिला पर आयताकार आलय बना कर सभी चित्रार्ध गढ़े गये हैं। गणेश व दिगम्बर शिव के चित्रार्धों के मध्य में अष्ट मातृकायों के साथ यमुना व एक मुखलिंग को उत्कीर्ण किया गया है। ऐन्द्री व नरसिंही के स्थान पर चामुण्डा के दो रूपों का चित्रण, लगभग सभी मातृकाओं के हाथ में कपाल और रुद्राक्षमाल, यह दिखाने के लिये पर्याप्त है कि इन चित्रार्धों को गढ़वाने वाले शाक्त-शैव परम्परा के तान्त्रिक वैरागी रहे होंगे, या उनके लिये किसी राजा ने इनका उत्कीर्णन करवाया होगा। ध्यान मुद्रा में महालक्ष्मी की उपस्थिति इस क्षेत्र में नेपाल की तत्कालीन मान्यता के प्रभाव को दर्शाती है। उग्र व सौम्य रूप के सभी विग्रह शुभकारक एवं साधक को अभय देने वाले हैं। यहाँ के चित्रार्ध योगमूर्ति, वीरमूर्ति व उग्रमूर्ति स्वरूप में हैं, जिनकी आराधना का उद्देश्य योग, सम्पन्नता, सुख, और अभय होते हैं। इन मूर्तियों की स्थापना के लिये आवश्यक विधान का सर्वथा पालन किया गया है। अभय का वरदान देने वाली मातृकाओं, नृत्यारम्भ भंगिमा में सौम्य शिव व गणेश की योग, वीर और उग्र मूर्तियों की स्थापना शान्त व निर्जन स्थान, नदी के तट पर करने का नियम है। चित्रकूट में अनुसूया आश्रम का क्षेत्र प्राचीनकाल से शाक्त परम्परा के सिद्धों व हठयोग की साधना करने वालों का केन्द्र रहा होगा, क्योंकि यहीं नहीं वरन कालिंजर, मड़फा, गोरखगिरि, खजुराहो इत्यादि स्थानों पर भी लकुलीश के ऊर्ध्वलिंग दिगम्बर स्वरूप में भगवान शिव का, और वामाचारी साधना के मकारों का चित्रण देखने को मिलता है। इन सभी बातों का विश्लेषण करने पर सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र शाक्त-शैव दर्शन, तन्त्र साधना व उसका अभ्यास करने वाले योगियों का प्रमुख केन्द्र था। शक्ति-शिला के चित्रार्ध साधक को सुख-शान्ति, सुरक्षा, अभय का वरदान देने के लिये थे, जिनमें सौम्य वामाचार का प्रभाव अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर वीर व दिव्य तांत्रिक योग साधना करते थे, इसीलिये यहाँ पंच मकार का दार्शनिक रूप देखने को मिलता है। यही कारण है कि

शक्ति-शिला के चित्रार्धों जैसा आयुध-नियमन, भंगिमा और मुद्रा अन्यत्र देखने को नहीं मिलती है।

आभार – इस विषय पर शोध करने में डा. अराखिता प्रधान, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, चंडीगढ़ और डा. जलज तिवारी, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, पटना से यथोचित मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

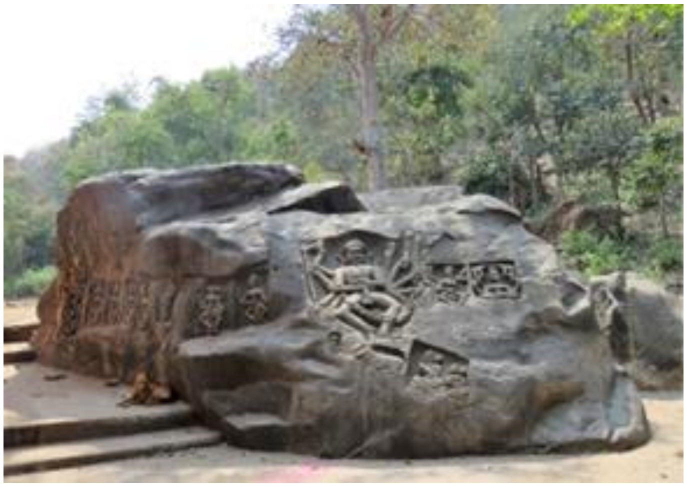

शक्ति-शिला

संदर्भ :–

उपाध्याय, वासुदेव. प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान. चौखम्बा विद्याभवन, 1970. वाराणसी.

श्रीवास्तव, बलराम. रूपमण्डन. मोतीलाल बनारसीदास, 1989. वाराणसी.

प्रसाद, महेश चन्द्र. प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक का हिन्दी अनुवाद. स्वप्रकाशित, 1935. पटना. पी पी 136.

राव, गोपीनाथ टी. ए. एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, 1:1, ला प्रिंटिंग हाउस, 1914. पी पी 754.

राव, गोपीनाथ टी. ए. एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, 1:2, ला प्रिंटिंग हाउस, 1914. पी पी 509.

ब्युह्नेमन, ग्युद्रुन. दि इकोनोग्राफी औफ हिन्दू तान्त्रिक डेटीज: दि पेन्थियन औफ दि मन्त्रमहोदधि, एग्बर्ट फोर्स्टेन – ग्रोनिन्गेन दि नीदरलैंड, 2000.

मुखोपाध्याय, अन्वय. दि गौडेस इन हिन्दू तान्त्रिक ट्रेडीशन्स: देवी एज कौर्प्स. रटलेज – टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप, 2018. पी पी 164.

त्रिवेदी, कीर्ति. फ्राम फार्मलेस टु फार्म – "ए मेथोडोलोजी टु मेक मेनीफेस्ट दि अनमेनीफेस्ट अकौर्डिंग टु हिन्दू आयकोनोग्राफी". प्रोसीडिंग्स आफ दि इन्टरनेशनल इन्टरडिसीप्लीनरी सिम्पोजियम. कटाची यूनीवर्सिटी. 1996.

लोरेन्ज़ेन, डेविड एन. दि कापालिकाज एंड कालामुखाज – टू लौस्ट शैवाइट सेक्ट्स, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 1991. देहली. पी पी 257.

आचारी, श्रीराम रामानुज हिन्दू आयकोनोलोजी. सिंह पब्लिकेशन, 2015. पी पी 54.

गिब्स, एच. ए. आर., सी. एफ. बेनिंघम. दि ट्रेवेल्स आफ इब्न-बतूता. दि हाक्ल्यूट सोसायटी – कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1994.

हेटले, शमन. ब्रह्मालयामलतन्त्र एंड अर्ली शैवा कल्ट आफ योगिनीज, 2007. पेन्सिल्वानिया विश्वविद्यालय, पी एच डी शोध ग्रंथ. पी पी 471.